वैदिक यज्ञ एवं यज्ञ की वैज्ञानिकता

Pradeep Kumar Dubey

Department of Sanskrit, Banaras Hindu University, Varanasi-5

Abstract

What is a Yajna? It is the performance of a religious duty involving Agni, the sacrificial fire, with the chanting of mantras. The word itself is dervied from the root "yaj" meaning "to worship", to evince devotion. The performance of a Yajna is meant to please the Paramantman and various deities. Yajna is also called 'yaga'.

We have already seen the definition of the word "mantra". "mananat trayate iti mantra" (that which protects us by being repeated and meditated upon). "Tranam" means to protect, All of you must be familiar with the words in the Gita; "Paritranaya sadhunam" (to protect the virtuous)! "Mananam" means repeating, turing over something in the mind. There is no need to vocalize the words of the mantra Even if it is repeated mentally, healthy vibrations' will be produced in the nadis'. if the same - the Vedic mantra- is chanted loudly (Vedaghosa) it will give divine joy to the listeners even if they do not understand its meaning. Such a sound has the power to make mankind happy.

Mind, speech and body are dedicated to the Vedas when you mutter a Vedic mantra mentally and vocalise it outwardly during the performance of a rite involving the body. Of the Vedic rites of this kind yajna or yaga is the most important.

यज्ञ का स्वरूप :

वैदिक युग में यज्ञ का महत्व बहुत ही व्यापक था। याज्ञिक-प्रक्रिया सम्पादन आदि विधियों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञ एक उत्कृष्ट वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उत्पन्न विधि-व्यवस्था है।

यज्ञ के विषय में हमें प्रारम्भिक ज्ञान वेदों से प्राप्त होता है। तदनन्तर ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ की विधि, व्यवस्था, प्रकार आदि के विषय में सम्यक् जानकारी मिलती है शतपथ ब्राह्मण, जो यजुर्वेद का ब्राह्मण है, यज्ञ के विषय में गम्भीर तथा व्यापक जानकारी देता है।

मैकडॉनोल भी इस तथ्य को मानते है कि यज्ञ के विषय में ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों में शतपथ ब्राह्मण अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। ब्राह्मणों का विशिष्टयोगदान यह है कि वे यज्ञ को सुलभ तथा सरल बनायें अपितु एक आध्यात्मिक, नूतन पृष्ठभूमि प्रदान करें। यागों के प्रक्रिया-निरूपण में शतपथ ब्राह्मण भौतिक यागों को प्रतीकात्मक ही मानता है। प्रो. लुई रेनू ने अन्तर्याग एवं बहिर्याग के पूर्ण सामंजस्य पर बल दिया है।

शतपथ ब्राह्मण में प्रतिपादित यज्ञ का स्वरूप

शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ का द्विविध रूप हमें प्राप्त होता है- (१) प्राकृतयाग एवं (२) कृत्रिमयाग : प्राकृतयाग उसे कहते हैं जो प्रकृति में निरन्तर चलायमान हो। उसी यज्ञ के अनुगमन से अन्य यज्ञों के विधान सिद्ध किये गये--

देवान्, अनुविद्या वै मनुष्याः यद् देवाः अकुर्वन् तदहं करवाणि। (शतपथ ब्राह्मण)

यज्ञ नामकरण में इसका मूल हेतु विस्तृत रूप नहीं है-

तद् यदेनं तन्वते तदेनं जनयन्ति स तायमानो जायते।[१]

यज्ञ से वाक्, पुरुष, प्राण, प्रजापति, विष्णु आदि को समीकृत किया गया है। यज्ञ मानवीय प्रकृति का महत्वपूर्ण घटक है। 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' एक व्याख्या के अनुसार जगत् अग्नीषोमात्मक है। सोम को यज्ञ के परिप्रेक्ष्य में अन्न बताया गया है। उसके भक्षक अग्नि देवता हैं।

अग्नि का यज्ञ विधान में वैशिष्ट्य

पृथ्वी स्थानीय देवों में अग्निदेव का विशेष महत्त्व है। उनके नाम का निर्वचन अनेक ग्रन्थों में प्रतिपादित किया गया है। (यथा--अङ्गीति ज्वालारूपेण ऊर्ध्वं गच्छतीति अग्निः।)

इनके विशेष नाम प्राप्त होते हैं। जैसे--

१. वैश्वानर-- (विश्व में नररूप शक्ति का चालक)।

२. धनंजय-- (धन को जीनते वाला, धन प्राप्त करने वाला)।

Vijnana Bharati

३. जातवेद-- (जिससे वेद उत्पन्न हुए है, जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है)।

४. तनूपात् -- (जिसके कारण शरीरों का पतन नहीं होता)।

५. रोहिताश्व-- (लाल रंग के घोड़ों से युक्त)।

६. हिरण्यरेत-- (सुवर्ण का वीर्य)।

७. सप्तजिह्वा-- सात जिह्वाओं से युक्त।

८. सर्वदेव मुख-- सब देवों में प्रमुख, किं वा सब देवों का मुख।

अत: उक्त शब्दों का भाव यदि अग्नि को आग माना जाये तो उसमें नहीं दिखायी देता अत: आग से भिन्न अर्थ मानना आवश्यक है। देवों ने जो पहला मानव प्राणी बनाया उसी का नाम अग्नि हुआ। मनुष्य जाति की उत्पत्ति हेतु देवों ने इस प्रथम मानव को बनाया जिसकी पत्नी 'वाणी' है। अत: मानव प्राणी को वेद में अग्नि शब्द से कहा जाता है। अग्नि और वाणी में आन्तरिक सम्बन्ध माना गया है। यह स्पष्ट है कि मनुष्य से पहले पृथ्वी पर अनेक प्राणी हुए पर उनमें वाणी की अपूर्णता थी उसी वाणी की पूर्णता मनुष्य में आ गयी। जैसा कि कहा गया है-

मनुष्य का सम्बन्ध वाणी से होने के कारण वाणी उसकी अर्धाङ्गी हैं। मनुष्यों ने जो उन्नति की है वह उसी के कारण, अनादिकाल से जो ज्ञान का संचार हो रहा है वह वाणी के कारण ही। ज्ञान भी हमें वाणी द्वारा ही प्राप्त हो रहता है। वेदों के कथन की सार्थकता वाणी में ही निहित है, जिसकी अग्नेयी वाणी ही है-

अग्नि	-	आग्नेयी
प्रथम मण्ड लक्ष्य	-	इठ्ठा (वाणी)
यम	-	यमी
यजेश्वपती	-	विश्वथली
पिता	-	माता
आत्म	-	अवा (रक्षन शक्ति)

इठ्ठा का दूसरा अर्थ भूमि है, भूमि बीज बोने के लिए होती है। मनुष्य अपना पहला ज्ञानरूपी बीज इस वाणी में बोता है, और इस प्रकार जो ज्ञान वृक्ष फैलता है, उसके ही फल को हम लोग खाते हैं। भूमि का दूसरा अर्थ होता है, स्त्री को भी क्षेत्र कहते है। इस प्रकार देवों ने एक पुरुष तथा एक स्त्री का सर्वप्रथम निर्माण किया। इसलिये कि पुरुष अपने वीर्य से सर्वप्रथम स्त्री में संतति उत्पन्न करें।

यज्ञ पुरुष का स्वरूप

शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ की प्रतीकात्मक व्याख्या की गयी है। एक रूपक में यज्ञ की कल्पना पुरुष रूप में की गयी है-

"हविर्द्धान उसका शिर, आवहनीय मुख, आग्नीध्रीय तथा मार्जालीय दोनों बाहुएँ हैं।" आत्मा यजमान है, श्रद्धा पत्नी है, शरीर यज्ञ का ईंधन है, हृदय यज्ञ वेदी है, कुश-मुष्टि (वेद) यज्ञ की शिखा है, कामना आज्या है, क्रोध पशु रूप है, तपस्या अग्नि है, दक्षिणा वाणी है। चक्षु अध्वर्यु है, मन ब्रह्मा है, अग्नीत् नामक ऋत्विक दोनों कान हैं।

तस्यैव विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः, श्रद्धा पत्नी, शरीरमिध्मम्, उरो वेदिः, लोमानि बर्हिः, वेदः शिखा, हृदयं वेदिः काम आज्यम् मन्युः पशुः तपोऽग्निदयः शमयिता दक्षिणा वाक् चक्षुरध्वर्युः मनो ब्रह्मा श्रोत्रमाग्नीत्।

मानवीय क्रियाओं की भाँति याज्ञिक क्रियाओं में ऐक्य प्राप्त होता है।

सृष्टि यज्ञ रूप का भी उल्लेख हमें प्राप्त होता है-संवत्सर यजमान है, ऋतुएँ यज्ञानुष्ठान करती हैं, वसन्त आग्नीध्र है, इस प्रकार वसन्त में दावाग्नि फैलती है। ग्रीष्म ऋतु अध्वर्युस्वरूप है, क्योंकि वह तप्त रहती है। वर्षा उद्गाता है, क्योंकि शब्द करते हुये जल बरसाते हैं। प्रजा को ब्रह्मवती कहा गया है। हेमन्त होता है।

महामहोपाध्याय पंडित गोपीनाथ कविराज के अनुसार, यज्ञ के पाँच स्वरूप हैं-देवता, हविर्द्रव्य, मन्त्र, ऋत्विक् तथा दक्षिणा से सम्पन्न होता है। पाँच संख्या का सम्बन्ध पाँच अंगुलियों से माना गया है।[३]

यज्ञ के दैविक रूप

यज्ञ को देवों की आत्मा कहा गया है, जहाँ अनृत भाषण निषिद्ध है। यज्ञ ही प्रकाश, दिन, देवता तथा सूर्य है। देवताओं ने यज्ञ के द्वारा सम्पूर्ण शक्ति अर्जित की तथा मनुष्य मृत्यु से ऊपर उठ गया।

शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ की मीमांसा का प्रारम्भ हविर्योगों से होता है। जिनका प्राकृति याग् अग्निहोत्र है। अग्निहोत्र को अग्नि मृत्यु के पश्चात् भी नष्ट नहीं करता अपितु माता-पिता के समान जीवन जन्म देता है। वह निरन्तर चलायमान है। यजमान

Vijnana Bharati

को स्वर्गलोक ले जाने वाली नौका के समान है। *नौर्हवा एषा यदग्नि- होत्रम्।*[४]

वैदिक कालीन यज्ञ में विज्ञान का स्वरूप

ऐसा प्रतीत हुआ कि वैदिक देवताओं के सतत् सहयोग के अभाव में हम सही रूप से नहीं रह सकते हैं। देवताओं के सतत् सहयोग प्राप्ति हेतु यज्ञ में वस्तु समर्पण द्वारा उन्हें सर्वदा प्रसन्न रखना चाहता है इस अवधारणा की पुष्टि इस से भी होती है।[५]

कुछ पाश्चात्य विचारक यह मानते है कि--मृतकों का मनुष्य के साथ विशिष्ट सम्बन्ध होने से देवाराधन विधि मृतकों के तर्पण की विधि का अनुकरण है।[६]

इसे खण्डित कर देने पर यह सिद्ध होगा कि समस्त देव यज्ञ मृतक पूजा पर आधारित नहीं है। देव-पूजा और मृतक पूजा जैसे रोम में अलग-अलग हैं, भारत में भी उसी प्रकार।

प्रारंभ में देवाराधना के लिए देवालय या देवोपासना के स्थल नहीं होने से वैदिक राजा सभा और अवसथ में अग्नियों को प्रज्ज्वलित करते थे। यह प्रथा रोम में भी प्राप्त होती है। यज्ञ का संकुचित अर्थ है यज्ञ स्थल पर देवताओं को बुलाना तथा हविष् चढ़ाना। अतः प्रारम्भिक यज्ञों में बहुमूल्य रत्नों आदि महार्घ दानों का अभाव था पर वैदिक कर्मकाण्ड का महत्त्व इतना अधिक था कि ब्राह्मण भू-देव कहे जाने लगे, जो आगे परवर्ती राजाओं को कहा गया। यज्ञ में आमंत्रित देवताओं की प्रसन्नता हेतु स्तुति, नृत्य, गीत आदि की व्यवस्था की जाती थी तथा दिखावटी, युद्ध, दुरुक्ति, रथ की भागदौड़, तीरन्दाजी और द्यूत क्रीड़ा आदि। ये कार्य वैदिक देवताओं के मनोरंजन करने के लिए तथा उन्हें प्रसन्न रखने के लिये किया जाता था।

वैदिक कर्म काण्ड आदि से अन्त तक अभिचारिक तत्त्वों से अनुस्यूत है, परन्तु अनेक यज्ञों में अभिचार का अंश नितान्त गौण है। यही प्रथा बेविलन में अपेक्षाकृत गौण रूप से ग्रीस में भी प्राप्त होता है।[८]

यज्ञ में मनुष्यों द्वारा दिये गये दान एवं दक्षिणा के प्रभाव से देवता लोग इह लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों को प्रदान करते हैं, ऐसी प्रतिज्ञा ऋग्वेद में की गयी है।[९]

देवतागण हवि के बिना नहीं रह सकते हैं। ऐसा उल्लेख मिलता है कि इन्द्र सुश्रवा के पास गये और बोले कि मैं भूखा हूँ। सुश्रवा द्वारा समर्पित पुरोडास को खुशी से खा लिया।[१०]

वैदिक देवताओं में वह भेद भाव नहीं है जो सामान्य मनुष्यों में होता है।

यज्ञ में वैदिक देवताओं को शक्ति देकर (शक्ति) देवकृपा पाना और भेंट देकर इनाम पाना सम्पूर्ण वैदिक धर्म का मौलिक आधार है। विकृपा पाने के पश्चात् कृतज्ञता सूचक यज्ञों का अभाव मिलता है। ऐसी विचारधारा रोम धर्म में भी नहीं प्राप्त होती है। पर भारतीय धर्मसूत्र में इस प्रकार के विचार का उल्लेख प्राप्त होता है--

यदि कोई मनुष्य अग्निया स्थापना के पश्चात् बीमार पड़ जाता है तो उसे अपने घर से चले जाना चाहिए, क्योंकि अग्नि ग्राम से प्रेम करते है और लौटने की इच्छा में उसे निरोग कर सकते हैं[११] और इस अवस्था में सोम या पशु यागों का अनुष्ठान करना चाहिए। जैसे पुत्र उत्पन्न हो जाने के पश्चात् पुत्र के स्वास्थ्य वृद्धि निमित्त यज्ञ किया जाता है।

यज्ञ--एक अभिचार

ब्राह्मणों का यह विचार की यज्ञ में एक शक्ति होती है जो अभिमत फल को स्वतन्त्रता से उत्पन्न करती है। परन्तु पूर्वमीमांसा जो ब्राह्मणों से उद्धृत कहा जाता है देवता सम्बन्धी विचार को त्याग दिया। ऐसा भी माना जाता है कि धर्म रूप में ब्राह्मणों का तत्त्व दर्शन नगण्य रूप में है, यह भी प्रश्न है कि यज्ञ के अभिचार के सम्बन्ध में ऋग्वेद में कोई ठोस प्रमाण मिलता है या नहीं-

बेर्गेन्य और गेल्डनर का कहना है कि पुरोहित अपने आप को देवता का नियामक मानते है, वे उन्हें यज्ञपाश में बांध सकते हैं और मनमाने काम करा सकते हैं[१२] और कुत्स ऋषि के विषय में यहाँ तक कहा गया है कि उसने इन्द्र को बेइज्जती के साथ बांध कर रखा था।

हिल्ले-ब्राण्ड्स द्वारा स्वीकृत यह मत कि ऋग्वेद ३८५ का अर्थ वस्तुतः यही है। शायद ही विश्वसनीय हो। परन्तु ये ग्राम्य विचार ऋग्वेद में एकान्ततः नहीं मिलते हैं पर इसकी पुष्टि हेतु इतना ही कहा जा सकता है। एक मन्त्र में दूध भरा कटोरा हाथ में लिये एक पुरोहित द्वारा इन्द्र का इस प्रकार पीछा किया जाना जैसे एक व्याध मृग का पीछा करता है और एक प्रार्थना में यह इच्छा प्रकट करना कि उपासक अपने घर में अग्नि का स्वामी बन जाय। ऋग्वेद १५.५ और यह कथन कि नमस्कार देवताओं से ऊपर हैं और देवताओं के ऊपर यज्ञ हवि हो ही रहा था कि यज्ञ का महत्त्व बढ़ गया। यहाँ तक कि सूर्य को अथर्वा के यज्ञ से उत्पन्न बताया गया

Vijnana Bharati

है। *यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतया वेन आजनि। आ गा आ जगदुशना काव्यः सचा यमस्य जामृतं यज्ञामहे।* और अङ्गिरस की आहुति पणियों के खजाने को जीत लिया तथा इसी यज्ञ से याज्ञिक सूक्त एवं छंद उत्पन्न हुए थे। यज्ञ से यज्ञा उत्पन्न करना वैदिक रहस्यवाद का परिचायक है, जो वैदिक रचनाओं का सामान्य गुण है। मानव द्वारा संपादित यज्ञ स्वयमेव फल उत्पन्न कर सकता है, यह भावना ऋग्वेद में यत्र-तत्र उभरी बैठी है, जहाँ प्रातःकालीन अग्निहोत्र को सूर्योदय में सहायक समझा गया है। एक परवर्ती सूक्त में साफ तौर से वृष्टि को पुरोहित देवापि का कार्य बताया गया है। किन्तु यह धारणा नितान्त भ्रामक होगी कि यज्ञ का अभिचार पक्ष आदिम है और सम्पूर्ण यज्ञ वस्तुतः एक अभिचारिक अनुष्ठान है। किन्तु ब्राह्मणों के अध्ययन से यह पता चलता है कि पुरोहित लोग इस बात पर तुले रहते थे कि वे यज्ञ के हर पक्ष में एक जादू जैसा प्रभाव ढूँढ निकालें। यज्ञ के हर पक्ष में कुछ न कुछ गुह्य प्रभाव निहित देखा गया है। सामान्य रूप से भी याज्ञिक प्रक्रिया में परविर्तन कर देने पर यजमान के जीवन और मौत का सवाल पैदा हो जाता है। कहीं-कहीं ऋग्वेद में भी यह दृष्टिकोण पाया जाता है।

कर्मकाण्ड के व्यवस्थित रूपमें आते-आते बहुत सी बातें भुला दी गयी, अभिचारिक तत्त्वों के सन्निवेश हेतु।

सर.जे.फ्रेजर का मत है कि वैदिक यज्ञ मे समर्पण नहीं प्रत्युत धरती पर वनस्पति जगत के एवं पशुजगत के प्रतिनिधि भूत एक सत्त्व के सामयिक वध और पशु जाति के एवं एक पशु के समय-समय पर वध द्वारा वनस्पति एवं पशु जगत को अभिनव करने के निमित्त एक सुव्यवस्थित प्रयास है।

इस मत में यज्ञ अन्ततोगत्वा सहज एवं शुद्ध अभिचार के रूप में बदल जाते हैं। एक उदाहरण हिल्लेब्राण्ड्ट ने प्रस्तुत किया है, जो अपने आप में रोचक है। अश्वमेघ यज्ञ के उपसंहार भूत स्नान में जुम्बुक के लिये एक घृणित आकृति वाले मनुष्य के सिर पर भेंट दी जाती है, इस मनुष्य को जल में घुसाया जाता है, और ग्रन्थों में स्पष्ट है कि जुम्बुक को वरुण माना गया है, और मनुष्य का चुनाव वरुण की आकृति के अनुरूप किया जाता है। अनुष्ठान में भाग लेने वाले मनुष्य को आश्रेय बताया गया है। उसे सहस्त्र गौएँ देकर खरीदा जाता है। उक्त समर्पण के अवसर पर उच्चरित मन्त्रों में यह भी कहा जाता है--मृत्यवे नमः भ्रूणहत्यायै नमः। फलतः हिल्लेब्राण्ड्ट की राय है कि यहाँ नर वध का संकेत मिलता है और यही मत वेबर का भी है और उनके अनुसार मनुष्य को जल में डुबो दिया जाता था।

हिल्लेब्राण्ड्ट इस व्याख्या को शुनःशेप के प्रस्तावित वध के आख्यान के साथ जोड़ते है। इन बातों में हिल्लेब्राड्ट निष्कर्ष निकालते है कि किसी समय बूढे राजा की बलि देकर नया राजा बनाने की प्रथा चालू थी, और इस बलि कार्य को अवश्मेघ यज्ञ के अन्त में किया जाता था। इस मत में अनूठी सूझ तो अवश्य है किन्तु सच्चाई से बहुत दूर है। शुनःशेप के आख्यान में कहीं भी राजा के वध की प्रथा का संकेत नहीं मिलता है, वहाँ पिता-पुत्र को बलि चढ़ाने जाता है।

जुम्बुक के निमित्त बलि की व्याख्या भी गलत तरीके से की गयी है। इसका यथार्थ प्रयोजन है कि ऐसा करने से गाँव के बहिष्कृत अथवा छेके गये व्यक्तियों के भी पाप धुल जाते हैं। यह अनुष्ठान उन अनुष्ठानों में से एक है जिनका प्रयोजन पाप को धुलना है। अनुष्ठा स्नान वानस्पति के अभिचार नहीं प्रत्युक्त एक मार्के का शोधक तत्त्व है।

इस तत्त्व से अनुष्ठान में प्रयुक्त मनुष्य के निर्धन होने का तथ्य स्पष्ट हो जाता है--ग्रीस के ऐसे ही अनुष्ठानों में फार्मकोई जिन्हें अनोखी चतुराई के द्वारा आदम और इव का पूर्वरूप बताया गया है, घृणित आकृति के है। यह कहना कि मनुष्य के आकार प्रकार में वरुण की झलक मिलती है, यह भी चिन्त्य है।

यज्ञ एवं अविचार के द्वारा पाप मोचन

रुद्र, वरुण आदि देवताओं के क्रोध को शान्त करने के लिये यज्ञ का आयोजन किया जाता था। जैसे चतुर्मास यज्ञ के प्रथम दिन दक्षिण अग्नि में जौ भूना जाता था तथा पाप की संख्या के अनुरूप कुशा को रखा जाता था। जिससे यजमान के पाप दूर हो जाते थे। आहुति देते समय कहा जाता था जो कुछ भी पाप हमने ग्राम्य, वन, मनुष्य के बीच और अपने मध्य किया है उस सब का यज्ञ द्वारा त्याग करते हैं। यज्ञ के रूप में अन्य नैतिक तत्त्व मिलते है। जैसे--शराब (मदिरा) को जलना आवश्यक है। क्योंकि वह पाप से परिपूर्ण है इसकी तुलना अश्वमेध यज्ञ के छाग की जल द्वारा शुद्धि के साथ की जा सकती है।

सोमयाग के समय ऋत्विक् यूप में टुकड़ों को देवों पितरों, मनुष्यों और स्वयं अपने द्वारा किये गये पापों को निवारणार्थ अग्नि में डालते है।

यज्ञ में मुख प्रक्षालन तीन साल के पापों को धोता है।

Vijana Bharati

इसके अलावा पापप्रक्षलन के निमित्त अनेक उपाय वैदिक युग में प्राप्त होते है। शराब की आहुति एक विशुद्ध प्रकार का भौतिक परिवर्तन है।

यज्ञ में प्रभु-भोज एवं महाप्रसाद

प्रभु भोज सम्बन्धी धारणा में दो तत्त्व साफ तौर से वर्तमान है जिन्हें परस्पर मिलाना आवश्यक नहीं है। प्रभु-भोज का अकेले आना भी सम्भव है जैसे मान लिया जाता है कि उपासक खा रहे है, और उनके साथ देवता भी भोज ग्रहण कर रहे हैं इस प्रकार देवता और उपासक में ऐक्य सम्बन्ध का परिचय मिलता है। जैसा कि इस प्रकार का उदाहरण होमरिक यज्ञ में मिलता है।

जबकि दूसरा उदाहरण अल्बन पर्वत पर बनाये जाने वाले लैटिन उत्सव में मिलता है।

यज्ञ के हव्य प्राशन से नहीं प्रत्युत स्पर्श मात्र से फल दिखाता है।

वाजपेय यज्ञ में भाग लेने वाले घोड़ां को वाजी बनने के लिये हव्य का नास लेना पड़ता है।

यज्ञ का आहुतियों का सुगन्ध लेने के लिये गौओं को समुचित स्थान पर हांक (भेज) दिया जाता था।

जेनवास का कहना है कि यज्ञ का मूलभूत तत्त्व देवता के सान्निध्य में आना और उसकी अनुकम्पा को प्राप्त करने के लिये बलि चढ़ाने का विचार है।

मनुष्य समुदाय के किसी एक प्राणी ने दुराचार किया जिससे देवता मानव के वर्ग से अलग हो गये। इसलिये उसे प्रायश्चित और प्रतीकों द्वारा शान्त करने की आवश्यकता है।

यज्ञ के उपादन

यज्ञ विषयक समर्पण सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य उन वस्तुओं का देवता को भोज चढ़ावे जिन्हें खाकर वह स्वयं आनन्द का अनुभव करता है। जैसे यज्ञ में दिये जाने वाले पदार्थ हैं जौ, चावल, दूध, दही, जल, तिल। इनमें तिल का पितरों के साथ सम्बन्ध है।

ग्रीक देश की तरह मृतकों का रक्त से भारतीय परम्परा में प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है।

ब्राह्मण ग्रन्थ याज्ञिक पशुओं में पाँच का उल्लेख करते हैं-मनुष्य, अश्व, वृषभ, भेंड़ा (मेढ़ा)और अज। जिनमें बकरा सबसे अधिक बलि के लिये उपयुक्त जाना जाता है। यज्ञ में मछली, सूअर, कुत्ते का निषेध किया गया है।

नरमेध (नरवध) के विषय में जानकारी ग्रन्थों में कम मिलती है। किन्तु अग्नि वेदी के निर्माण में पाँच जीवों की बलि चढ़ाने की प्रथा थी। जिसमें एक मनुष्य होता था। पाँचों के सिर याज्ञिक वेदी के अन्दर चुन दिये जाते थे।

यज्ञ और विज्ञान

आधुनिक विज्ञान का आधार विद्युत (तेज) है, वहीं वैदिक विज्ञान का आधार प्राण शक्ति है विद्युत शक्ति प्राण शक्ति से परे नहीं है। ऋषि, देवता, गन्धर्व प्राण शक्ति में ही आते हैं।

पाणिनी ने यज् धातु का अर्थ देव पूजा संगतिकरण और दानार्थक बताया है। प्राणस्थ देवताओं की अभ्यर्चना तथा अहुति प्रदान करना ही यज्ञ है। यज्ञ के परिचायक देवता अग्नि या सोम हैं यह जगत अग्नि सोमात्मक है। (अग्नि षोमात्मकं जगत) अग्नि सोम (अन्न) का भक्षण करते हुए निरन्तर स्वरूप में परिणत करता है। ऋग्वेद में भी स्थूल जल के भीतर सोम और अग्नि नाम के दो तत्त्वों की सत्ता बतायी गयी है।

आधुनिक वैज्ञानिक जल में हाइड्रोजन और आक्सीजन नामक गैस मानते है। जो वैदिक विज्ञान का सोम और अग्नि का योग है। जिसे विराट् शब्द से भी कहा जाता है। अतः यज्ञ ही समस्त पदार्थों का अन्तरात्मा है।

ईश्वर तत्त्व को वैज्ञानिक नहीं मानते है। जो समस्त तत्त्वों का आधार स्वरूप है। देवता प्राण रूप है, जिन्हें(देवता) ईथर शब्द से कहते हैं। विद्युत शक्ति ईथर ही है। अन्ततः अनेक आधार और प्रमाणों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक यज्ञ पूर्ण रूप से विज्ञान से परिपूर्ण है।

मन्त्र में वैज्ञानिकता

मन्त्रों को पढ़ते हुए अग्नि में जो आहुति दी जाती है उसे यज्ञ कहते हैं। 'मननात् त्रायते इति मन्त्रः' अर्थात् जिसके उच्चारण (मनन) से प्राण की रक्षा होती हैं उसे मन्त्र कहते हैं। मन्त्रों के पुनरुच्चारण से नाद तत्त्व में स्वास्थ्यवर्धक प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न होती है। उन्हीं मन्त्रों के तेज उच्चारण से आनन्द की अनुभूति भी होती है। इस प्रकार की ध्वनि उच्चारण में मानवता को खुशी प्रदान करने की शक्ति है।

वैसा आनन्द आधुनिक गीत तथा वाद्यों में नहीं मिलता है।

Vinana Bharati

सन्दर्भ :

१. शतपथ ब्राह्मण ३.९.४२३

२. भारतीय संस्कृति और साधना प्रथम तक पृ. १६८

३. शतपथ ब्राह्मण २.३.४.१५

४. फाइस्त कल्तूर देर इन्दोषमीनन, पृ.३५१

५. हिर्त दी इन्दोजर्मनन, पृ.५१९

६. स्तेन्त्सल आप्फर ब्राउरवे देर ग्रीशरान, पृ.१२६

७. फार्नेल ग्रीस एण्ड बाबलन, पृ.१७६-८.२९१

८. ऋ. १.५४.९-३७.३.९

९. पंचविंश ब्राह्मण

१०. आ.गृ.सू. १.१

११. रि.लि. वै. , पृ.२९९

१२. बेर्गेन्य, रिलि. वै. १.१४०

१३. बेबर, राजसूय बर्त्विन १८९३

१४. दि गोल्डेन बाऊ लन्दन १९११-१४

१५. हिल्लेब्राण्ड्ट, पृ.३०

१६. आल्डेन बर्ग, रिलि. देस, वेद पृ.३२५

१७. लैंग द वर्ल्ड ऑफ होमर, पृ.१२८

१८. हूबर्त ओर मीस्स अन्ने सोशिऑल. पृ.७६

१९. आडिया ऑफ गॉड इन अर्ली रिलिजनस, पृ.६०.१०७

२०. शतपथ ब्राह्मण २.१.३९

Vijnana Bharati